UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 161, Vol - XVI (6), August - 2017, Page No. 35-37
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

उत्तर आधुनिकता के परिदृश्य में हिन्दी साहित्य

प्रस्तुत शोधपत्र, उत्तर आधुनिकता के परिदृश्य में हिन्दी साहित्य के अध्ययन से सम्बंधित है। उत्तर आधुनिकतावाद शब्द कई भिन्न अर्थों में इस्तेमाल होता चला आ रहा है, यह वर्तमान समय की विचारधारा है, मूड है, एक ऐतिहासिक युग है, सांस्कृतिक कला वस्तु है, सामाजिक अनुलक्षण है। जब हम आधुनिकता के साथ 'उत्तर' जोड़ देते हैं, तो इसके दो स्वरुप सामने आते हैं, एक आधुनिकता का विस्तार और दूसरा उसके अवसान के पश्चात् नवरारम्भ। आज उत्तर आधुनिकवादी लेखन और समीक्षा पद्धति का बोलबाला है। यह एक विराट बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन के बतौर उभरा है, जिसकी व्याप्ति तमाम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक-वाणिज्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक तथा प्रौद्योगिकीय संदर्भों तक समान रुप से है। आज भूमण्डल सिमटकर एक इकाई बनता जा रहा है। देश और काल की सीमाएँ मिट गई हैं, किन्तु यह सब कुछ भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा के सर्वथा विपरीत है। आज जीवन के हर क्षेत्र में यंत्रों का प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है कि मनुष्य धीरे-धीरे स्वयं एक यंत्र बनता जा रहा है। *कुँजी शब्द : उत्तर आधुनिकतावाद, नवरारम्भ, वसुधैव कुटुक्बकम्, सीमाएँ, स्त्री विमर्श, कालचिंतन, वैश्वीकरण, नया साहित्य।*

डॉ.अमित शुक्ल

प्रस्तावना :

उत्तर आधुनिकतावाद उनको परिलक्षित करने वाला एक व्यापक किन्तु विवादास्पद पारिभाषिक शब्द है। उत्तर आधुनिकतावाद शब्द कई भिन्न अर्थों में इस्तेमाल होता चला आ रहा है, यह वर्तमान समय की विचारधारा है, मूड है, एक ऐतिहासिक युग है, सांस्कृतिक कला वस्तु है, सामाजिक अनुलक्षण है। जब हम आधुनिकता के साथ 'उत्तर' जोड़ देते हैं, तो इसके दो स्वरूप सामने आते हैं एक आधुनिकता का विस्तार और दूसरा उसके अवसान के पश्चात् नवरारम्भ जो वर्ग इसे विस्तार की कड़ी मानते हैं। वे मानते हैं कि आधुनिकतावाद विज्ञान की देन है और विज्ञान का चरमोत्कर्ष प्रौद्योगिकी है और उत्तर आधुनिकतावाद का आदर्श प्रौद्योगिकी को पार करना नहीं, उससे समझौता करना है, इसका आधार वाक्य है। दूसरा वर्ग यह मानता है कि ज्ञानोदयी योजना जो आधुनिकतावाद का आधारभूत दर्शन था। उसमें ठहराव आने के बाद यह एक नया दर्शन उभर कर सामने आया है। जिस प्रकार आधुनिकतावाद की अवधारणा किसी एक व्यक्ति या पुस्तक की देन नहीं थी उसे विकसित होने में कोई तीन सौ वर्ष का समय लगा था, प्रस्थान बिन्दु 1660 माना जाता है, जब कहा गया था "World has awaskened and become goal when magic has disappeared and fimally realized that stics and stones can break your bones but words never." उसी प्रकार उत्तर आधुनिकतावाद बीसवीं शताब्दी में साठ के दशक के उन मुक्ति आन्दोलनों से निकला है, जिन्होंने व्यक्ति तथा व्यवस्था, अल्प समूह तथा वृहत समाज, विचारों तथा विसंगतियों, नीतियों, राजनीति व राष्ट्रीयता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। नारी मुक्ति, दलित–दमित–दमन विद्रोह, अश्वेत रोष, शांति मार्च, मसैन क्रान्ति, युवा विद्रोह और न जाने कितने छोटे–छोटे आन्दोलनों में विभेदों और केन्द्रीयता के चक्रव्यूह को तोड़कर समाज को जनसमाज व संस्कृति को जनसमूह की संस्कृति में बदल दिया। आज उत्तर आधुनिकता के प्रभाव क्षेत्र का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह फिल्म से लेकर फैशन तक, विचार से लेकर विज्ञापन तक, कल्चर से लेकर कॉमिक्स तक, कला से लेकर साहित्य–संस्कृति और यहाँ तक की इतिहास, दर्शन, मीडिया सभी इससे प्रभावित दिखाई देते हैं। परिणामस्वरूप विरोधी विचार, हाशिए पर स्थित लोग, नारी वर्ग, दलित जनजातियाँ, समलैंगिक स्त्री पुरूष आदि जिन्हें समाज में सक्रियता व सांस्कृतिक संवाद के दायरे से बाहर रखा जाता था अब अस्मिता के संघर्ष समूह बनकर उभरे हैं।

आज उत्तर आधुनिकतावादी लेखन और समीक्षा पद्धति का बोलबाला है। यह एक विराट बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन के बतौर उभरा है जिसकी व्याप्ति तमाम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक–वाणिज्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक तथा प्रौद्योगिकीय संदर्भों तक समान रूप से है। वैश्वीकरण, जनमाध्यम, बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद भी उत्तर आधुनिकतावाद के ही सहचर हैं। विगत तीस वर्षों से पाश्चात्य जगत में उत्तर आधुनिकता को साहित्य के दो रूपों में संदर्भित किया जा रहा है। एक ओर उसके अभिलक्षणों के आधार पर रचनात्मक लेखन हो रहा है, तो दूसरी ओर साहित्य के मूल्यांकन की आलोचनात्मक

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (मध्यप्रदेश)

प्रक्रिया का प्रभावी कारक बनकर भी वह उभरा है। पश्चिमी देशों में उत्तर आधुनिकता से निर्मित प्रतिमानों के आधार पर पूर्ववर्ती कृतिकारों की रचनाओं की पुनर्मीमांसा भी हुई जिसमें अनेकों रोचक तथ्य सामने आये। परम्परागत आदर्शों को चकनाचूर करते हुए मनुष्य को अपने अनुसार जीने, सृजन करने और नव निर्माण करने के लिए खुला छोड़ दिया है। जहाँ मनुष्य तकनीकी कौशल के सहारे असंभाव्यको संभाव्य बना सकता है। भारतीय संदर्भ में उत्तर आधुनिकता यथार्थ से मीडिया परिचलित छाया में छलांग है। वह सूचना तंत्र के कृत्रिम जुड़ाव के रूप में वैश्विक ग्राम के सपने की वास्तविकता का जामा पहना रही है। उसे 'फन–फूड–फैशन तथा फिल्म' के क्षेत्र में विशेष सफलता मिली है। वह मूल्य मीमांसा को खारिज करके स्थितियों के बहुवचनवाद को प्रतिष्ठित करती है। जब हम उत्तर आधुनिकता के अभिलक्षणों पर विचार करते हैं तो हमारा ध्यान सर्वप्रथम उसके कालचिंतन पर जाता है। वह कालगत क्रमबद्धता का निषेध करते हुए कालातीत दृष्टिकोण का परिचय देती है। वह शुद्ध इतिहास के निषेध द्वारा बीती हुई घटनाओं की क्रमागत प्रस्तुति के बजाय कालदोषता का निरूपण करती है। वह इतिहास की मृत्यु की घोषणा करते हुए काल को निरवधि रूप में देखने की हिमायत करती है। वह काल के केन्द्रिकता एवं बिन्दुवारिता के बजाय घटनीयता, असमयपरकता तथा कालिक व्यतिक्रम को प्रतिष्ठित करती है। वह सीमाहीन काल की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए भूत, भविष्य एवं वर्तमान को युगपत अथवा समानांतर मानती है। उत्तर आधुनिकता का अगला अभिलक्षण स्थितियों का बहुवचनवाद है। यह शक्ति, सत्ता तथा सम्पत्ति के विकेन्द्रीकरण पर जोर देती है। उसने मनुष्य पर परम्परागत संस्थानों का नियंत्रण शिथिल कर दिया है। इस रणनीति के तहत् वह समाज, विवाह, परिवार, धर्म, राष्ट्र–राज्य, शैक्षणिक–सांस्कृतिक संस्था समेत सबकी जड़बद्धता का अतिक्रमण करती है। आज मानवाधिकार संगठनों, न्यायपालिका तथा संचार माध्यमों की बढ़ती भूमिका प्रशासनिक संस्थानों तथा सैन्य तंत्र के दमन के विरोध में जाती है। वर्तमान विश्व व्यवस्था में वही सरकारें प्रतिष्ठा पा रही हैं जिनके नागरिक मानवाधिकारों तथा स्वतंत्रता का सर्वाधिक लुत्फ उठा रहे हैं। उत्तर आधुनिकता केन्द्रहीनता अथवा विकेन्द्रीकरण की पक्षधर है। यह हाशिए की शक्तियों को मुख्य धारा में लाकर प्रधान शक्तियों को स्थानच्युत कर रही है। इसके अनुसार सर्वाधिकारवाद की परिणति निरंकुशता, एकरसता तथा एकरूपता में होती है जो सर्जनात्मक वैविध्य के लिए घातक है। साहित्य, पत्र–पत्रिकाएँ, फिल्म, दूरदर्शन, उपग्रह चैनल एवं इंटरनेट ने महिलाओं को एक ग्लैमरस एवं रूमानी छवि प्रदान की है। प्रौद्योगिकीय क्रांति ने महिलाओं के शारीरिक सौन्दर्य को असीम विस्तार देते हुए उसे 'ग्लोबल ब्रांड' ही बना दिया है। इस तरह उत्तर आधुनिकता स्त्री–विमर्श के जरिये सामाजिक जीवन में लोकतंत्र लाने का कार्य कर रही है। वस्तुतः उत्तर आधुनिकतावाद द्वारा परिचालित स्त्री–विमर्श एक बहुआयामी, बहुस्तरीय एवं जटिल प्रत्यय है जिसकी भिन्न संदर्भों में परस्पर भिन्न व्याख्याएँ संभव हैं। स्त्री–विमर्श का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण भी उसके एकाकी निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण की इजाजत नहीं देता। उत्तर आधुनिकता की दृष्टि में हर रचना अथवा साहित्यिक कृति एक पाठ है। इसे जूलिया क्रिस्तिवा, जॉक देरिदा, पॉल डी मान, हार्डमैन, मिलर आदि अन्तरपाठों के समुच्चय के रूप में देखते हैं। इस पाठ में गर्भित अर्थ और निगूढ़ताओं को उद्घाटित करना अतिशय चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस संदर्भ में हार्डमैन ने शेक्सपियर के हेमलेट से एक संवाद उद्धृत किया है कि 'पाठ भूत की तरह होता है जो व्याख्याकार को चुनौती देता है कि वह उसे समझे' यह तभी संभव है जब आलोचक अंतर्दृष्टि एवं प्रतिभा सम्पन्न हो जिससे वह पाठ के अलंकारों के विखंडन द्वारा उसका विरहस्यीकरण कर सके। इस पाठ के भीतर चल रही अर्थक्रीड़ाओं तथा उसमें निहित अर्थ की सुनी–अनसुनी अनुगूँजों को सुनने–सुनाने का कार्य उत्तर आधुनिक समीक्षा पद्धति द्वारा ही संभव है। देखा जाये तो उत्तर आधुनिकतावाद साहित्य में डिस्कोर्स अनालिस्ट को लेकर आया। विमर्श विश्लेषण, जिसे संवाद, बातचीत या डिस्कोर्स कहा गया, की धारणा का विस्तृत उपयोग उत्तर आधुनिकतावादियों ने किया। यह सिद्धान्त समाजशास्त्रीय व द्वन्द्ववादी दृष्टि का विरोधी है। चरक संहिता में भारतीय डिस्कोर्स का प्रारम्भिक रूप मिलता है परन्तु उत्तरआधुनिकतावाद संवाद की पद्धति पर बल देता है। सुधीश पचौरी के अनुसार ''मैं पचास जगह समझौते करता हूँ, मैं उस जगह झूठ बोलता हूँ, मैं अपनी स्वयत्तता को रोज तोड़ता हूँ, मैं रिप्रर्जेटेंशन को डेली लूज करता हूँ लेकिन मैं डिस्कोर्स में जाता हूँ तो कहता हूँ कि स्वायत्तता जरूरी है क्रांति जरूरी है। सबसे बड़ी चुनौती यह बेईमानी है जो किसी भूमण्डलीकरण में नहीं है। उत्तर आधुनिकतावादी कई वैचारिक पद्धतियों का साहित्यिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनमें नव इतिहासवाद, सांस्कृतिक अध्ययन, अधीनस्थ अध्ययन, नारीवाद शामिल है। ये सब वेचारिक पद्धतियाँ साहित्यिक पाठ को नारी चेतना, दलित विमर्श, ऐतिहासिक, सामाजिक राजनीतिक दृष्टिकोणों से देखती हैं। और इसी दृष्टिकोण से उसका मूल्यांकन भी करती है। साहित्य के क्षेत्र में इहाव हसन को उत्तर आधुनिकतावादी सिद्धान्तकार माना जाता है। वह मानता है कि मन का यह बढ़ता आग्रह कि बिना किसी व्यवधान के तत्क्षण वास्तविकता का बोध हो एवं ज्यादा चेतना का संचय करते रहने की प्रवृत्ति ताकि वह स्वयं ही अपनी वास्तविकता हो जाए, चेतना ही सब कुछ हो जाये और प्रकाश के आगे भौतिक पदार्थ पिघल कर लय होते जायें। वह मानते हैं कि उत्तर आधुनिकता एक ऐतिहासिक और निर्णायक परिवर्तन है खासकर औद्योगिक पूँजीवाद और पश्चिम श्रेणी के मूल्यों में निर्णायक परिवर्तन का दौर है। उत्तर आधुनिकतावाद के प्रसिद्ध विचारक ल्योतां ने उत्तर–आधुनिक परिस्थितियाँ कृति में लिखा है कि आज हीगेल और मार्क्स जैसे विचारक नहीं हैं। अथवा उनकी प्रासंगिकता घट गई है। सार्वभौम मुक्ति के विचार जड़ हो गए हैं। इनके बजाए हमें व्यक्तिवादी ढंग से किसी घटना के द्वारा मानव मुक्ति की योजना बनानी चाहिए।

साहित्य जो अनुभूति की गूँज है, संवेदना का भावक है, जीवन की सार्थकता है, उसका रूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। बौद्धिकता से उपजी सर्जना ने साहित्य को भटकाव की अन्धी गली में छोड़ दिया है। साहित्य को खुली चुनौती आज प्रिन्ट मीडिया के स्थान पर इलेक्ट्रानिक मीडिया ने दी है। नयी संचार प्रविधि के प्रवेश से साहित्य का सारा रूप बदल गया है। केवल

टेलीवीजन को सामने रखकर देखा जाये तो उसके आने से साहित्य का आधार ही बदल गया है। वह दृश्य बन गया है। साहित्य पढ़ा जाता था उसके लिए शब्द ज्ञान आवश्यक था। टी. वी. के लिए उसकी आवश्यकता भी नहीं रह गयी उसने साहित्य को तात्कालिक दृश्य और भूमण्डलीय बना दिया है। राजनीति और व्यवसाय वृत्ति के साथ मिलकर साहित्य का चेहरा बदल गया है। सामान्य अनुभूति पर साहित्य का फैशन हावी हो गया है। सर्जना ने सौन्दर्य के नये–नये मानदण्ड बना लिए हैं। कभी–कभी तो लगता है कि साहित्य विज्ञापन का ही एक हिस्सा है। हिन्दी के बहुत से लेखक अब टी.वी. के लिए ही लिखते हैं। पुराने संवेदनशील लेखक सिनेमा के लिए लिखने में हिचकते थे, उनकी आत्मा को ठेस लगती थी किन्तु अब ऐसा कुछ नहीं है। आज हिन्दी भाषा के कई रूप प्रचलित हैं। एक स्तर फिल्मों, सीरियलों और फिल्मी गीतों की भाषा का है दूसरा समाचारों का तीसरा वार्तालापों, परिचर्चाओं और उद्घोषणाओं का और चौथा विज्ञापनों का। पूरे विज्ञापन तंत्र ने हिन्दी का प्रसार अवश्य किया है किन्तु उसकी रचनाशीलता को दूषित भी किया है। इलेक्ट्रानिक मीडिया तो एक उदाहरण है। नयी शताब्दी की पूरी परिस्थिति और उससे आविर्भूत मानवीय नियति, को जो एक नाम दिया गया है वह है–उत्तर आधुनिकता। इस उत्तर आधुनिकता ने साहित्य एवं संस्कृति को सर्वाधिक प्रदूषित किया है। प्रगतिशीलता और नवाचार की आड़ में ओढ़ी गयी उत्तर आधुनिकता के कारण ही आज विभिन्न सामाजिक विद्रूपताएँ पनप रही हैं। इस उत्तर आधुनिकता की कोई समग्रतावादी या सकलतावादी परिभाषा सम्भव नहीं फिर भी यह स्पष्ट है कि उत्तर आधुनिकता पूँजी के नये खेल, शैलियों के तेज चक्र, फैशन के पल–पल परिवर्तित रूप, विज्ञापन की ताकत, इलेक्ट्रानिक मीडिया की शक्ति, भूमण्डलीय स्तरीकरण एवं नव उपनिवेशवाद का नाम है।

उत्तर आधुनिक परिस्थिति और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को लेकर हिन्दी जगत विचित्र ऊहापोह की स्थिति में है। लेखक का एक वर्ग कुछ दूसरी ही बात लेकर चिन्तित है। वह संस्कृति, कला, धर्म, सत्य, की अवधारणा, कालगति आदि जीवन और जगत के गहन तत्वों के विमर्श में विश्वास करता है। यदि उसे कभी उपभोक्ता संस्कृति की चिन्ता होती है तो वह सारा दोष पश्चिम के उस धर्मभाव के जिम्मे मढ़ देता है जिसमें दिव्यता का वास सृष्टि के परे किसी सातवें आसमान में प्रतिष्ठित विश्व सृष्ट में ही माना गया है। उदाहरण के लिए रमेशचन्द्र शाह कहते हैं–यदि यह ईश्वरवास्य है तो यहाँ इस लोक में कुछ भी पवित्रता से, दिव्यता से बहिष्कृत नहीं है। यह सारा चराचर विश्व एक होलिस्टिक विश्व है और इसलिए उसके साथ हमारा सम्बन्ध उपभोक्ता या नियन्ता का नहीं हो सकता। फिर भारत अपनी सारी श्रेष्ठ दार्शनिक मान्यताओं और 19वीं सदी के सांस्कृतिक जागरण की निष्पत्तियों के बावजूद धीरे–धीरे विश्व के आकर्षण का केन्द्र क्यों बनता जा रहा है यह समझ में नहीं आता। हिन्दी जगत की प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि और शिखर आलोचना पुरूष डॉ. नामवर सिंह चाहे पूरी तरह निराश हों न हों लेकिन उन्हें इस भोगवादी संस्कृति की शक्ति का गहरा एहसास है। वह चेतावनी के स्वर में कहते हैं–विकास के चरम पर पहुँची यह सभ्यता जहाँ है, उसका विरोध भी उसकी सूचना तंत्र और प्रचारतंत्र का अंग बन सकता है।

निष्कर्ष यह है कि उत्तर आधुनिकता की अपनी सीमाएँ व समस्याएँ हैं। यह सच है कि विज्ञान, सत्य तथा न्याय के नाम पर आधुनिकतावादियों ने दुनिया का उपनिवेश बनाया था और हमें विकास की अंधी दौड़ में शामिल कर दिया है। लेकिन साथ दिया है अंधेरा, संवादहीनता, भयावहता, अहंवादिता और संशय इन सबसे मुक्ति पाने का एक अभी तक प्रक्रियावादी मार्ग है–उत्तर आधुनिकता, जो अपनी बहुलता एवं संवाद की सामूहिकता के लिए विश्व विषय बना हुआ है। देखा जाए तो उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में चार स्वर उभर कर सामने आते हैं–पहला स्वर चिंता, निराशा, बचाव का है दूसरा स्वागत का तथा तीसरा प्रखर विरोध और चौथा समर्पण। हमारा देश विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं को सुरक्षित रखने वाला अनेक जातीय संस्कृतियों का देश है। इसके साहित्य एवं संस्कृति को सुरक्षित रखना हर साहित्यकार का कर्तव्य है। इसके लिए उसे सक्रिय वैचारिक कदम उठाना होगा। ऐसा कदम जो सबसे पहले भाषा के छद्म का पर्दाफाश करे क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में सदैव भाषा के छद्म का ही प्रयोग किया जाता है। ऐसा कदम जो आचार और विचार दोनों स्तरों पर गरीब, अशिक्षित, उपेक्षित, असहाय और पीड़ित जनता के पक्ष में हो जो छोटे–छोटे प्रलोभनों से दूर रहकर चीजों को सामान्य जनता की दृष्टि से देखे व समझे। ऐसा कदम जो विचारधारा के आधार पर समाज की संरचना का स्वप्न देखते समय मनुष्य, उसकी प्रकृति, संस्कार और नैतिक बोध की उपेक्षा न करें। यह सोच युवा पीढ़ी के ऐसे रचनाकारों की है जो दृढ़, संघर्षशील, विवेकशील और आशावादी हैं। ऐसे रचनाकार यदि संगठित शक्ति के रूप में सामने आयें तो उत्तर आधुनिकता से उत्पन्न आसन्न संकट का प्रतिरोध आसान हो जायेगा और आशा की नई किरण प्रस्फुटित होती नजर आयेगी। 21वीं सदी के हिन्दी साहित्य में नयी सूक्ष्मताएँ और संभावनाएँ भी गर्भित और संदर्भित हो गयी हैं, जो नये समाजशास्त्र और नये साहित्य की माँग कर रही हैं।

संदर्भ :

(1) मिश्र, श्रीप्रकाश : उत्तर आधुनिकतावाद, पृ. 116–118.

(2) *चतुर्वेदी, जगदीश्वर : उत्तर आधुनिकतावाद, पृ. 158, 160.*

(3) *जनसत्ता, वार्षिक अंक, 1996, पृ. 6.*

(4) *उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद, पृ. 66, 67.*

(5) *कलिया, रवीन्द्र : नया ज्ञानोदय, नई दिल्ली, अगस्त, 2008, पृ. 21.*

(6) *नवीन, देवशंकर एवं मिश्र, सुशांत कुमार (2000) : उत्तर आधुनिकता कुछ विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 18, 19.*

(7) *क्षोत्रिय, प्रभाकर (वक्तव्य) : अक्षरा पत्रिका, भोपाल, अक्टूबर–दिसम्बर, 2006.*

(8) *दैनिक भास्कर, समाचार पत्र, जबलपुर, 8 मई, 2008, पृ. 06.*

(9) *जनसत्ता, समाचार पत्र, नई दिल्ली, 3 जून, 2008, पृ. 6.*

(10) *स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।*

❁ ❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 161, Vol - XVI (6), August - 2017, Page No. 38-39
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

कथाकार राजेन्द्र यादव की रचनाओं में नारी समस्याएँ

प्रस्तुत शोधपत्र, चर्चित कथाकार राजेन्द्र यादव की रचनाओं में नारी समस्याओं पर केन्द्रित है। उन्होंने आधुनिक नारी के जीवन को प्रतिबिम्बित किया है। उनकी रचनाओं में नारी का रुप पुरुषों से बोल्ड विचारों के रुप में है। नारी के मानसिक तनाव के गहनतम रुप का सजीव चित्रण उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। उन्होंने मानव की संकुचित वृत्ति के खिलाफ अपना ऐतराज प्रकट किया है। साथ-ही-साथ अनमेल विवाह के भीषण हालातों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। समाज की प्रमुख समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। नारी मुक्ति और स्वतंत्रता ही उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य है।

राधिका के.एन.

'नारीवाद' को अंग्रेज़ी में 'फेमिनिज़्म' कहा जाता है। 'नारीवाद' एक विचारधारा भी है और एक आन्दोलन भी है। 'नारीवाद' मूल रुप से समानता व सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं और पुरुषों के मध्य व्याप्त समाजगत असमानता को नकारता है। 'नारीवाद' के अनेक प्रकार हैं, जिसमें अलग-अलग विचारकों में विभिन्न आयामों को महत्व दिया है। 'नारीवाद' विभिन्न सामाजिक सिद्धांतों का एक ऐसा निर्मित रुप है, समाज में स्थित दोनों लोगों के बी के सम्बंधों को बताता है तथा उनके अनुभवों की वाणी विभिन्नता को भी करवाता है। महिला स्वतंत्रतावादी आंदोलन के विकास के साथ ही उनमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना बढ़ी है और महिला विमुक्ति आन्दोलन के समर्थकों ने महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों का विरोध करना शुरु कर यिा है। क्रिया के स्तर पर इस आंदोलन को व्यापक सफलता मिली है। ये मुद्दे उन महिलाओं ने उठाए हैं, जिनकी बौद्धिक पहचान अंतर्राष्ट्रीय स्तर की मानी जा सकती है। इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में नारी मुक्ति आन्दोलन खुद को एक नये मोड़ पर खड़ा पा रहा है। बाज़ारवाद और खुली अर्थव्यवस्था में स्त्री-पुरुष सम्बंधों के समीकरण को प्रभावित करना शुरु कर दिया है। इसके ठोस प्रमाण अब खुलकर सामने आने लगे हैं। समकालीन महिलाएँ समाज में अपनी स्थिति, अधिकारों और समस्याओं को लेकर मुखरित हुई है। समकालीन विभिन्न संदर्भों में स्वतंत्रता चाहने वाली आधुनिक नारी में स्वतंत्र चेतना, मानव एवं स्वाधीन व्यक्तित्व की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

ज़िंदगी रुपी गाड़ी को आगे चलाने वाले दो पहिये, स्त्री और पुरुष हैं। इनमें जब एक पहिया खराब होता है, तो गाड़ी रुक जाती है। वैसे ही स्त्री और पुरुष आपस में मेल नहीं खाते हैं, तो ज़िंदगी बिगड़ जाती है। फिर स्त्री परित्यक्ता बन जाती है। ज़िंदगी से परित्यक्त नारी की मानसिक स्थिति संघर्षमय होती है। 'लौटते हुए' की मृदुला कपड़े की दुकान लाती है। दहेज के कारण वह परित्यक्त हो गई।

आजकल मानव सबसे ज्यादा महत्व शिक्षा को देता है। शिक्षा ने स्त्री तथा पुरुष समाज को नव-चेतना प्रदान की है। इसके फलस्वरुप स्त्री समाज में अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्षरत रही है। मगर सामाजिक जीवन में उसका स्वर ऊँचा है। स्त्री शिक्षा तथा स्वतंत्रता के खिलाफ आवाज़ उठाने वालों की धारणा है कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा छोटी ही है। यदि स्त्री को स्वतंत्रता तथा शिक्षा का अधिकार मिल गया, तो पुरुष का महत्व कम हो जाएगा तथा उन्मुक्तता की हालत में स्त्री का पथभ्रष्ट होना निश्चित है। मानव की असली प्रतिभा उसके उदात्त गुणों में है। वह दूसरों के लिए जितना अधिक त्याग कर सकता है, वही उसके बड़प्पन की निशानी है।

जहाँ समाज का विकास आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तौर पर होता है, वहीं कई समस्याएँ भी आती हैं, क्योंकि विकास के लिए मानव जो प्रयत्न करता है, उन प्रयत्नों की प्राप्ति में समाज को अपने मूल्य उत्सर्ग करने पड़ते हैं। इसके फलस्वरुप नये सामाजिक मानदण्ड के मूल्य जन्म लेते रहते हैं। सामाजिक विकास प्रक्रिया में कई समस्याएँ पैा होती हैं। नारी भावुक होने के कारण इन सभी समस्याओं में ज्यादा उलझ जाती है।

राजेन्द्र यादव नई पीढ़ी के रचनाकार हैं। उन्होंने व्यक्ति तथा कलाकार के द्वंद्व को अपने लेखकीय जीवन के शुरु से अंत तक एक सवाल की तरह लिया है। वे अर्थप्रभाावी जीवन प्रक्रिया का विश्लेषण करने वाले कथाकारों में से एक हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में वैयक्तिक सम्बंधों पर जोर दिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'नारी विषयक' अनेक समस्याओं को चित्रित किया है। जिनका गहरा प्रभाव नारी के मानसिक, सामाजिक विकास पर होता है। उन्होंने मध्यवर्गीय प्रान्तों की अन्तर चेतना, हीन भावना, अग्रसारिता, उदात्तता आदि भावनाओं का वर्णन मनोविश्लेषणात्मक ढंग से किया है। 'सारा आकाश' की प्रभा और मुन्नी शोषित व उत्पीड़ित नारियाँ हैं। 'उखड़े हुए लोग' की पद्मा मानसिक पीड़ा सहन करती है। 'एक इंच मुस्कान' की अमला के ज़रिये ऐसा व्यक्त किया है कि वह स्वतंत्रता चाहती है। उन्मुक्त रहना चाहती है। अमला मानती है कि, नारी का जीवन पुरुष के अभाव में निराशामय हो जाता है। नारी की इस समस्या को मनोविज्ञान के तौर पर प्रस्तुत किया है। सार्वजनिक जगहों

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), महात्मा गाँधी गवरमेंट आर्ट्स कॉलेज, माहि (केरल)

पर लड़कियों के साथ छेड़-छाड़ होना सामान्य बात हो गई है। बसों में सफर के दौरान अनुचित करतूतें होती हैं। इस प्रकार का वर्णन 'अनदेखे अनजान फूल' में वर्णित है। ऐसी घटनाएँ रोज़ अखबारों में होती ही हैं।

राजेन्द्र यादव ने मानव की संकुचित वृत्ति के खिलाफ अपना ऐतराज प्रकट किया है। साथ-ही-साथ अनमेल विवाह के भीषण हालातों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। 'कुलटा' में तेजपाल रोमांटिक और दुस्साहनी चरित्र का प्रतिनिधि है। मिसेज तेजपाल अपने संवेग, ईवेग, यौन अतृप्ति के लिए एक वायलिन वादक के साथ चली जाती है। यह उपन्यास नारी वर्ग की स्वतंत्र चेतना तथा वांछित जीवन शैली का प्रतीकात्मक उपन्यास है।

राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के संयुक्त उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' प्रयोग के स्तर पर पुरुष पात्र एवं स्त्रीपात्र सम्बंधी विवेचन पर विकसित है। उदय और रंजना के बीच एक प्रेरक कला चेतना एवं संवेदना से संपन्न अमला को लेकर तनाव है। ऐसी रचनाओं के जरिए विवेच्य उपन्यासकार नारी की विवशता को दर्शाना चाहते हैं। आज की स्वतंत्र चेतना, आत्मनिर्भर तथा कॅरियर के प्रति जागरुक प्रोफेशनल प्रवृत्ति की महिलाएँ अपने स्टेटस तथा मानसिक स्तर के अनुसार रहना चाहती हैं। अमला सी नारी सातवें दशक में कलाकार की कल्पना जैसी नारी है। आज के परिवेश में विकसित जीवन शैली, आधुनिकता तथा चुनाव की स्वतंत्रता तथा अधिकार भावना में हर प्रबुद्ध नारी में अहम, ईगो की स्थिति निर्मित है। अमर पूर्णतः समर्पित पति नहीं है तथा नारी पात्र रंजना पीड़ित मानसिकता की नारी है। रंजना सहनशीलता की मूर्ति है। वह सब कुछ सहन कर लेती है, बल्कि पति का पर स्त्री के साथ सम्बंध बर्दाश्त नहीं कर सकती है। रंजना इस मनोवृत्ति की शिकार है। रंजना का प्रेम विवाह, व्यावहारिक स्तर पर आते ही शंकाओं और मानसिक घुटन से त्रस्त होकर अमर और रंजना के जीवन को नीरस बना देता है। पति-पत्नी में तीसरे व्यक्ति के आने से जीवन उन तीन कोणों में विघटित होकर तीनों के सम्बंधों में दरार ला देता है।

नारी के मानसिक तनाव के गहनतम रुप का सजीव चित्रण यादवजी की रचनाओं में दिखाई देता है। रंजना के प्रेम से त्रस्त अमर उसे पत्नी के रुप में स्वीकार तो कर लेता है, परंतु समग्र रुप में अपना नहीं सका। अमर स्वयं को रंजना से तुच्छ समझने लगता है। मगर रंजना उसकी मानसिक स्थिति को जानती है। वह जानती है कि अमर पूर्णतः समर्पित नति नहीं है।

अमर, अमला के लिए पत्नी से झूठ बोलता है। अमला और रंजना अमर के दो आधार हैं। अमला के आगमन से उसका वैवाहिक जीवन अतृप्त हो जाता है। इसके फलस्वरुप अमर को दोनों ने छोड़ दिया। इसमें नारी के अंतर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्रण है।

राजेन्द्र यादव ने आधुनिक नारी के जीवन को प्रतिबिम्बित किया है। उनकी रचनाओं में नारी का रुप पुरुषों से बोल्ड विचारों के रुप में है। सामाजिक दबावों से पीड़ित नारी के यथार्थ विश्लेषण 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' संग्रह की अधिकांश कहानियों में किया है। उन्होंने कुंठित मनोवृत्तिवाले पात्रों को सामाजिक संदर्भों में व्यक्त किया है। अंधविश्वास की भावनाओं तथा कुंठित मनोवृत्तियों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है। रुठिाग्रस्त वातावरण की शिकार लक्ष्मी के चरित्र से यथार्थ का संवेदनात्मक रुप झलकता है। समाज में फैली हुई स्वार्थ लोलुपता, अर्थाभाव तथा नैतिक मूल्यों का विघटन 'साईकिल' कहानी में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत कहानी की नारी को खुद का अस्तित्व न होने से पुरुष के पीछे भावहीन और मूकवाणी की तरह निःसंदेह चलना है। यही भारत की सदियों से आती आंतरिक उत्पीड़न की दर्दभरी भावना है। रश्मि के पति आनन्द अर्थलोलुप है। वह पति को कई बार जताती है कि थड़ानी अच्छा इंसान नहीं है तथा उसकी नज़र बुरी है। मगर आनन्द यह सब मानता ही नहीं, क्योंकि उसे ऐशोआराम की ज़िंदगी पसंद है। यहाँ नारी की मानसिक पीड़ा को समझने वाला कोई नहीं है।

एक लड़की, जिसका नाम सुरेखा है। सुरेखा साहित्य और संगीत विधा में निपुण थी, मगर वैवाहिक जीवन में सुरेखा स्वतंत्रता खो बैठती है। मानवीय संवेदनाओं पर आधारित कहानी 'मर्यादा' है। आजकल मानव की स्थिति पेड़ की तरह ही है। अपना सा कहने के लिए कई लोगों के होने के बावजूद भी संकट पड़ने पर वह अकेला ही होता है। यह कहानी इसकी प्रतीकात्मकता का बखाने करने वाली है।

स्वाधीनता मानव को अकेलेपन की ओर ले जाती है। अकेलेपन की परिणति इस अहसास में होती है, 'साईकिल' का प्रयोग प्रतीकात्मक है। घरेलू औरत को रास्ते पर साईकिलिंग के लिए पति द्वारा दबाव डाला जाता है। जिसे ऐसी सवारी की कोई ज़रुरत नहीं है। मतलब यह है कि आज के युग में जिसे 'नारी-स्वातंत्र्य का युग' कहा जाता है, उसमें भी नारी प्रताड़ित की जाती है। स्वतंत्रता के उनहत्तर वर्ष बीतने के बाद भी नारी की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। पुरानी प्रथा के अनुसार लड़की को गाय की श्रेणी में रखा जाता था, अर्थात् गाय की तरह किसी खूँटे से बांध दिया जाता था। आज भी लड़की की हालत वैसी ही है। मगर अंतर यह है कि आज वह साईकिल का पिछला पहिया नहीं, बल्कि अगला पहिया है। आज का पुरुष नारी रुपी साईकिल पर सवार होकर अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में कोई कमी नहीं करता है। 'प्रतीक्षा' कहानी की गीता काम की चेतना से कुंठित नारी है। अकेलापन आधुनिक जीवन का अभिशाप है। गीता अपने अकेलेपन को दूर करनेवाले व्यक्ति की प्रतीक्षा में है।

आज का बच्चा किसी फिल्म में नायक ऐनिका को नई ड्रेस पहने देखकर उसका अनुकरण करना चाहते हैं। आजकल ज्यादा से ज्यादा अंग और शरीर प्रदर्शन ही आधुनिकता है। भारतीय संस्कृति पर जो पाश्चात्य की धारा बह रही है, उसमें युवा बह रहा है। भारतीय स्वतंत्रता के बाद यहाँ की संस्कृति में नए सिरे से उथल-पुथल हुई है। पहले पश्चिमी प्रभाव को अस्वीकृति की दृष्टि से देखा जाता था, मगर अब प्रगति का चिह्न मानकर उसे स्वेच्छा से अपनाया जा रहा है।

सभी जब परिवार के दायित्व में बंध जाते हैं, तब वह किसी अज्ञात भय के अधीन हो जाते हैं। बल्कि जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है, उन पर समाज अभियोग लगाता है। उसकी स्वतंत्रता का मूल्य नारी की अपनी तथा नारी समाज की नज़रों में होना चाहिए, न कि पुरुष की नज़रों में। आज का समाज परिवर्तनशील है। साहित्य में समाज के परिवर्तनशील रुप की झलक प्रस्फुटित होती है। हर युग की विचारधारा तथा मान्यताएँ अलग-अलग हैं। यही मान्यताएँ समाज में नये युग का सृजन करती है। राजेन्द्र यादव ने समाज के परिवर्तित रुप और युगीन बेचैनी को गहनतम तौर पर अभिव्यक्त किया है। उन्होंने समाज की प्रमुख समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। नारी मुक्ति और स्वतंत्रता ही उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य है।

संदर्भ :

(1) डॉ.धनात्रेजन (संपादक) : श्री मिलिन्द, मासिक पत्रिका, 2011.

(2) राजेन्द्र यादव की विभिन्न कहानियाँ।

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 161, Vol - XVI (6), August - 2017, Page No. 40-42
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

छायावादी कविता में राष्ट्रीयता

प्रस्तुत शोधपत्र छायावादी कविता में राष्ट्रीयता को लेकर लिखा गया है। छायावादी कविता में रहस्य भावना के साथ-साथ स्वतंत्रता का आह्वान भी किया गया है। रहस्यवाद की वृत्ति अंतर्मुखी होती है, जबकि राष्ट्रीय जागरण के युग में स्वतंत्रता के आह्वान का सम्बंध बाह्य जगत से है और संभव है कि वह सम्मिश्रण कुछ विलक्षण भी प्रतीत हो, किन्तु यह कोई नवीन तथ्य नहीं है कि साहित्य में स्वच्छंदता, रहस्यवाद और स्वतंत्रता प्रेम की भावनाएँ परिलक्षित न होती हों। राष्ट्रीय जागरण की क्रोड में पलने वाला साहित्य छायावादी साहित्य प्रतीकवाद, रहस्यवाद और स्वतंत्रता-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं को साथ लेकर चला और राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पथों पर भटकने से बचा लिया, छायावादी कवि में आंतरिकता की कितनी ही प्रधानता क्यों न हो, वह अपने युग से निश्चित रुप से प्रभावित होकर राष्ट्रगान में संलग्न रहा है।

डॉ.संजीव कुमार श्रीवास्तव

कविता मानव जीवन एवं समाज का गतिशील दर्पण है। कवि, जीवन की उर्वर पीठिका पर अवस्थित होकर युगदृष्टा की भाँति, राग तत्व की अधिकाधिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए, परम्परा एवं परिवेश तथा अनुभव एवं स्वाध्याय से प्राप्त निष्कर्षों को कविता में उतारने लगता है। इस रूप में वह शाश्वत सत्य का व्याख्याता बनकर जीवन को गतिशील बना सकने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। उसकी मानसी–सृष्टि में रागों का जो उदात्त धरातल उभरता है, उस पर पहुँचकर मानव–मात्र अपनी लघु–स्थिति के संकोच से विमुक्त होकर आत्मा या उच्च मनःस्थिति के विस्तृत प्रांगण में अवतरित होता है। विचार एवं अनुभूति के योग से कविता भी शाश्वत स्वरूप को प्राप्त होती है।

छायावादी कविता का मूल उत्स वैदिक संस्कृति का पुनर्जागरण है। जिस युग में छायावादी काव्य जन्मा उस युग में वैदिक संस्कृति के पुनर्जागरण की चर्चा बहुत सुनी जाती थी। छायावादी कविता में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का यह प्रयास स्पष्ट झलकता है। विद्वान आलोचकों ने भी छायावाद को एक विशाल सांसतिक चेतना का परिणाम माना है। छायावाद के अन्यतम ग्रन्थ 'कामायनी' महाकाव्य में वेदों के पुनर्जागरण का स्वरूप देख सकते हैं। जिस प्रकार तुलसीदास का रामचरित मानस नाना पुराण निगमागम सम्मत है, उसी प्रकार कामायनी वेदों और ब्राह्मणों का सार है, जो युग के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत किया गया। प्राचीन ऋग्वेद के प्रतीक जैसे मित्र, वरुण, सविता, उषा आदि का इसमें व्यवहार हुआ है। छायावादी कवियों ने वेदादि के पुनर्जागरण और सांसतिक पुनुरुत्थान की स्थापना की ओर कदम बढ़ाया।

छायावादी कवियों में राष्ट्रीयता की भावना थी, जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलनों को स्वर प्रदान किया। छायावादी कवियों द्वारा कवियों ने प्राचीन वीरत्व एवं आत्म गौरव को जागृत किया और उनका साधन करके भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने भारत की गौरव महिमा गाने में प्रति का आश्रय लिया इसलिए 'अम्बर चुम्बित भाल हिमालय' या 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का चित्रण किया। उस स्वदेश प्रेम की भावना में द्विवेदी युग की उपदेशात्मकता का अभाव तथा देश की प्राचीन संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का पोषण है। छायावादी काव्य का 'सबको सुखी बनाओ का नारा' युगानुकूल है।

'राष्ट्र' शब्द सुनते ही जिस मनुष्य को अपने एक विराट स्वरूप का आभास नहीं होता, रोमाँच नहीं होता और गौरवपूर्ण स्वाभिमान से जिसकी आत्मा पुलकित होकर सुख–सीकरों के रूप में व्यक्त नहीं हो उठतीं, उसमें मनुष्यता के किसी तत्व की कमी है, ऐसा मान लेने में कोई अनौचित्य नहीं है।

प्रसाद जी के अनुसार – अपने राष्ट्र को सबसे बड़ा देवता मानना ही सच्चा धर्म है। राष्ट्र के अस्तित्व से ही हमारे मंदिरों और उनमें स्थापित देवताओं का अस्तित्व है। जहाँ राष्ट्र नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। राष्ट्र की पूजा करना ही सबसे बड़ी पूजा है, किन्तु इसकी पूजा–पद्धति अन्य पूजा प्रकारों से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्र की पूजा पारस्परिक स्नेह, संगठन, स्वदेश प्रेम की भावना एवं गौरव व सहयोग है। निर्भीकता, सत्य, साहस और पुरुषार्थ के प्रसाद से राष्ट्र देवता प्रसन्न होते हैं। हमें अपने चारित्रिक गुणों के प्रसूनों से राष्ट्र–देव का शृंगार करना चाहिए।

युग–युगान्तर से आज तक हम अपने जिस राष्ट्र गौरव के प्रति निष्ठा, स्वाभिमान को अवनत न होने दिया, उस राष्ट्र के निवासी अकर्मण्यता से हटकर प्रबल कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त रहकर राष्ट्र का विकास करें, इसी मंतव्य को लेकर युग–प्रवर्तक प्रसाद ने अपने काव्य–शिल्प का आकार दिया। उनकी अभिलाषा थी कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), किशोरी रमण पी.जी.कॉलेज, मथुरा (उत्तरप्रदेश)

समझते हुए सक्रिय सेवा के लिए निरन्तर सन्नद्ध रहे। अपने मस्तिष्क को पूर्णतः राष्ट्र के उन्नति–विषयक विचारों में लगा दे। सम्पूर्ण मानव समुदाय में एकता, समानता, सहानुभूति एवं स्नेह की भावना हो। जिसे राष्ट्र के मानवों में – एकता, समानता, सौहार्द्र, पारस्परिकता की पूर्ण भावना होगी, उसके लिए फूट–मनमुटाव, दुख–दारिद्रय, अभाव आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

रोमानी भावबोध के काव्य को अभिव्यक्ति देने वाले कवि 'प्रसाद जी' का काव्य अपने परिवर्तित परिवेश की उपज है। राजनैतिक दृष्टि से प्रसाद जी का युग 'एक युग का अन्त और नये युग का प्रारम्भ है। इसी समय देश की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस का पुराना युग समाप्त हो रहा था और उसका नेतृत्व नई पीढ़ी के युवकों के हाथों में आ रहा था। महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व आलोच्य काल के सम्पूर्ण राजनैतिक परिवेश का केन्द्र रहा है। गाँधी जी के विचार, आचार और राजनैतिक आन्दोलन इस काल के साहित्य को क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक रूप से प्रभावित करते रहे हैं।

छायावादी धारा के कवियों ने गाँधी जी के व्यक्तित्व, तित्व, सिद्धान्त पक्ष और आलोचना पक्ष समस्त को अंगीकार किया, अतः यह काव्यधारा अपनी पूर्ववर्ती काव्यधारा से कुछ भिन्नता रखती है। इसमें एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया तो दूसरी ओर जनता को स्वाधीनता संग्राम के प्रति जागृत करने का प्रयास किया। इस काल की रसधारा के कवि अनुभूति की सच्चाई के कारण राष्ट्रीयता की भावना के प्रति सहज दिखे।

छायावादी कविता दो महायुद्धों के बीच की कविता है। इस स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कर रहे थे, जिनके प्रमुख अस्त्र– सत्य, अहिंसा, असहयोग की नीति थी। यद्यपि प्रारम्भिक रूप से इन उपकरणों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली किंतु इससे न तो गाँधी जी निरूत्साहित हुए और न ही देशवासी। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने छायावादी काव्य की वेदना और निराशा का संबंध प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेजी शासन का अपने वचनों को पूरा न करना, 'रॉलेट एक्ट' तथा 1919 के 'अवज्ञा आन्दोलन' की असफलता के साथ जोड़ा, जो असंगत सा प्रतीत होता है। असफलता के अनन्तर भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सैनानियों के लक्ष्य, नीति और अदम्य उत्साह में तिल भर भी अन्तर नहीं आया, इन्हीं सतत् प्रयत्नों और अप्रतिहत उत्साह शक्ति के परिणाम स्वरूप 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

छायावादी कवियों की राजनैतिक आन्दोलनों के प्रति अपेक्षात उदासीनता के कारण तत्कालीन राजनीतिक निराशा नहीं प्रत्युत ओद्योगिकता से प्रेरित उनका व्यक्तिवाद है तथा उनका काव्य के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है। यह तो एक संयोग था कि छायावाद का जन्म तब हुआ जब राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे और यदि वे न भी होते तब भी छायावादी काव्य का जन्म अवश्यंभावी था। इसीलिए इस बात को स्पष्ट समझ लेने की आवश्यकता है कि हमारा देश यदि पराधीन न होता और हमारे यहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन की आवश्यकता न रही होती तो भी आधुनिक औद्योगिक समाज (पूँजीवाद) का विकास होते हुए ही काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावना और व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति मुखर हो उठती। छायावादी कविता राष्ट्रीय आन्दोलन या जागृति का सीधा परिणाम नहीं, बल्कि पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और संस्कृति के बाहरी और भीतरी जीवन में प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे, जिन्होंने जिस तरह सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाई और राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा प्रदान की, उसी प्रकार सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति को प्रेरणा दी। इस दृष्टि से देश की प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य के प्रभावों को ग्रहण करती हुयी छायावादी कविता राष्ट्रीय जागरण के क्रोड में पनपी और फली–फूली है, राष्ट्रीय आन्दोलनों का यह लाभ अवश्य हुआ कि व्यक्तिवाद असामाजिक पथों पर न भटका।

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का सृजन है अतः राष्ट्रीय भावना कोमल स्वरूप में मानवतावाद के रूप में प्रस्फुटित हुई जहाँ प्रसाद जी –

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओं,
अपने सुख को विस्तृत कर लो जग का सुखी बनाओ। (कामायनी)

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना स्वस्थ वातावरण की सृष्टि करेगी, संघर्षों का शमन करेगी, पारस्परिक भेदभाव का शमन करेगी, जिसमें मनुष्य समानता और मानवतावाद को जीवन की कला के रूप में स्वीकारेगा और प्रेम व्यवहार आनन्द का संदेश देगा –

प्रतिफलित हुयी सब आँखें,
उस प्रेम ज्योति विमला से,
तब सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से। (कामायनी)
मानवता अब निखिल विश्व बोधक
मानवता पर्याय धारा का नव
राष्ट्रों, तन्त्रों, धर्मों का निश्चय,
सार सत्य मंगल – प्रिय नव मानव। **(पन्त : लोकायतन)**

छायावादी काव्य की राष्ट्रीय चेतना जनकल्याण के प्रति प्रेरित और केन्द्रित थी, जिसमें कवियों द्वारा विवेचित समिष्ट धर्म में मानवता का कल्याण करने की तीव्र स्पृहा है।

और लगाना गले उन्हें –
जो धूल धूसिरित खड़े हुए हैं,
अब से प्रियतम, हैं भ्रम? (निराला : अपरा)

छायावादी कविता में रहस्य भावना के साथ–साथ स्वतंत्रता का भी आह्वान किया गया है। रहस्यवाद की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है, जबकि राष्ट्रीय जागरण के युग में स्वतन्त्रता के आह्वान का संबंध बाह्य जगत् से है और सम्भव है कि वह सम्मिश्रण कुछ विलक्षण भी प्रतीत हो, किन्तु यह कोई नवीन तथ्य नहीं है कि साहित्य में स्वच्छंदता, रहस्यवाद और स्वतंत्रता–प्रेम की भावनायें न परिलक्षित होती हों। राष्ट्रीय जागरण की क्रोड़ में पलने वाला साहित्य छायावादी साहित्य प्रतीकवाद, रहस्यवाद और स्वतंत्रता–प्रेम, राष्ट्र–प्रेम की भावनाओं को साथ लेकर चला और राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पथों पर भटकने से बचा लिया, छायावादी कवि में आन्तरिकता की कितनी भी प्रधानता क्यों न हो वह अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित होकर

राष्ट्रगान में संलग्न रहा –

अरूण यह मधुमय देश हमारा
या
हिमाद्रि तुंग श्रंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

छायावादी कविता की राष्ट्रीय भावना के मूल में लोकमंगल की भावना है, जो किसी को कष्ट पहुँचाने के विरूद्ध है और समाज में शांति स्थापित करने का संदेश देती है; जिसमें नृशंसता का तिरस्कार, क्रूरता को राष्ट्रीयता से पृथक करना, राष्ट्रीय भावना को मानवता से प्रेरित करना, व्यापक बनाना, शांति स्थापित करना, मातृभूमि की प्रतिष्ठा और उसकी अमरता का संदेश, उपरिता, त्याग, आदर्श की स्थापना, नारी के आदर्श–सम्मान राष्ट्रीयता का परम लक्ष्य है जिसमें राष्ट्रीयता का चरम उत्कर्ष, विश्व शान्ति, सद्भाव और समरसता है।

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था। (कामायनी)

संदर्भ

(1) शर्मा, डॉ० शिवकुमार : हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ।
(2) खण्डेलवाल, डॉ.जयकिशन प्रसाद : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ।
(3) मिश्र, डॉ.कृष्ण मुरारी : छायावादी काव्य में सौंदर्य चेतना।
(4) कठेरिया, डॉ.जमुना प्रसाद : जयशंकर प्रसाद के साहित्यक : राष्ट्रीय दृष्टि से अनुशीलन।
(5) दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय।
(6) सिंह, डॉ. शंभुनाथ : छायावाद युग।
(7) डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ।
(8) गुलाबराय : राष्ट्रीयता।
(9) देव, आचार्य नरेन्द्र : राष्ट्रीयता और समाजवाद।
(10) उपजीव्य ग्रंथ : प्रसाद, पन्त, निराला।

❁ ❁

UGC - APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print

शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

(1) शोध-पत्र **1500-1700 शब्दों से अधिक नहीं** होना चाहिए।
(2) **हिन्दी एवं मराठी माध्यम के शोधपत्रों को कृतिदेव 10** (Kruti Dev 010) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।
(3) **पंजाबी माध्यम के शोधपत्रों को अनमोल लिपि** (AnmolLipi) या **अमृत बोली** (Amritboli) या **जॉय** (Joy) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।
(4) अंग्रेजी माध्यम के शोधपत्र टाईम्स न्यू रोमन (Times New Roman), एरियल फोंट (Arial) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' या 'माइक्रोसाफ्ट वर्ड' में भेजे जा सकते हैं।
(4) शोधपत्र की विधि - (1) शीर्षक (2) एबस्ट्रेक्ट (3) की-वर्ड्स (5) प्रस्तावना/प्रवेश (5) उद्देश्य (6) शोध परिकल्पना (7) शोध प्रविधि एवं क्षेत्र (8) सांख्यिकीय तकनीक (9) विवेचन या विश्लेषण (10) सुझाव (11) निष्कर्ष एवं (12) संदर्भ ग्रंथ सूची।
(6) संदर्भ ग्रंथ सूची इस प्रकार दें -

For Books :
(1) Name of Writer, "Name of Book", Publication, Place of Publication, Year of Publication, Page Number/numbers.

For Journals :
(2) Name of Writer, "Title of Article", Name of Journal, Volume ....., Issue ....., Page Numbers.

Web references :
http://utc.iath.virginia.edu/interpret/exhibits/hill/hill.html

(7) **गुजराती माध्यम** के शोधपत्र **हरेकृष्णा (Harekrishna), टेराफोंट वरुण (Terafont Varun), टेराफोंट आकाश (Terafont Aaksah)** में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजे जा सकते हैं।
(8) शोधपत्र की साफ्टकॉपी रिसर्च लिंक के ई-मेल आईडी researchlink@yahoo.co.in पर भेजने के बाद हॉर्डकॉपी, शोधपत्र के मौलिक होने के घोषणा पत्र के साथ हस्ताक्षर कर 'रिसर्च लिंक' के कार्यालय को प्रेषित करें।

❁ ❁

UGC Approved Journal
- Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 161, Vol - XVI (6), August - 2017, Page No. 43-44
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

कबीर दर्शन में 'संतोष'

प्रस्तुत शोधपत्र में कबीर दर्शन में 'संतोष' को लेकर अध्ययन किया गया है। वे कहते हैं कि संतोषी व्यक्ति को परम आनन्द प्राप्त होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि संतोष रुपी धन कैसे प्राप्त किया जाए? उन्होंने कहा है कि परिणाम अथवा फलाशा के विचार से रहित होर स्व-कर्तव्य को करते रहना, किसी वस्तु के अभाव पर खिन्न न होना, जिस स्थिति एवं अवस्था में रहने का संयोग हो जाए, उसी में सहर्ष रहना तथा किसी प्रकार भी अपनी इच्छा के वशीभूत न होना, संतोष कहलाता है। उन्होंने लिखा भी है कि, संतोष ही एक ऐसा धन है, जो मरकर भी काम आता है। संतोष धन प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति की आँखों में चमक, मुख पर तेज, अधरों पर मुस्कार और मन में कर्तव्यपरायण की भावना आ जाती है। संतोष का आचरण मानव को मानव बनाता है और सामान्य से विशेष की ओर ले जाता है। संतोष ही एक ऐसा अमृत है, जिसका पान करके व्यक्ति अमर हो जाता है। जिसके पास संतोष होता है, वह इस भौतिक संसार का राजा न होते हुए भी वह एक शहंशाह की तरह प्रसन्न सुखी व चिंतारहित जीवन व्यतीत करता है।

श्रीमती मीनाक्षी पिंपलापुरे

वर्तमान समय में चारों ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। आज की भीड़ भरी दुनिया में, भौतिकता की आँधी में, साम्प्रदायिक संकीर्णता की बाढ़ में, प्रतिस्पर्धा की होड़ में, स्वार्थपरता के तूफान में हमारे सभी नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्य बहते चले जा रहे हैं। वर्तमान समय में समाज में औसतन व्यक्ति की सामान्य धारणा यह है कि धन ही जीवन का आधार है। धन से ही इच्छाओं की पूर्ति की जा सकती है। धन ही धर्म और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। इस गलतफहमी के कारण मेहनत मजदूरी और ईमानदारी से जीवन यापन करने की बजाय झूठ एवं फरेब का रोजगार दिन ब दिन बढ़ते जा रहा है।

प्रायः सभी मनुष्य धन के पीछे भाग रहे हैं। अधिक से अधिक धन कमाने की चाह ने व्यक्ति को लोभी बना दिया है। कबीरदास जी कहते है कि–

"जब मन लागा लोभ सों, गया विषय में भोय।
कहैं कबीर विचारि के, केहि प्रकार धन होय।।[1]

जब मनुष्य का मन धन के लोभ में आसक्त हो जाता है, तो वह विषयों के चक्कर में फँसकर स्वयं को विस्मृत कर दिन–रात यही सोचता है कि धन का संग्रह कैसे हो। लोभ और लालसा दोनों एक समान ही हैं। जहाँ लालसा होती है, वहाँ लोभ भी होता है। लोभ के बढ़ जाने से व्यक्ति की समझ खोखली होते जाती है, स्मृति गड़बड़ाने लगती है और मति भी घूम जाती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य की आँखें होने के बाद भी उसको सत्य असत्य कुछ दिखाई नहीं देता।

"कबीर औंधी खोपड़ी, कबहूं धापै नांहि।
तीन लोक की सम्पदा, कब आवै घर मांहि।।" [2]

कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य मतिभ्रम में पड़कर इस प्रकार का व्यवहार करने लगता है कि वह कभी धन से तृप्त ही नहीं होता। जैसे–जैसे धन बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसका लोभ भी बढ़ता जाता है। ऐसी उल्टी खोपड़ी वाले व्यक्ति धन की चाह में तीनों लोकों की सम्पत्ति के स्वामी बन जाना चाहते हैं।

इस तरह स्पष्ट है कि लोभी व्यक्ति की इच्छाएँ कभी भी पूरी नहीं होती। एक इच्छा पूरी करो तो दूसरी इच्छा जन्म ले लेती है। लोभ के वश में व्यक्ति इतना बेचैन हो जाता है कि उसका सुख चैन भी उसका साथ छोड़ देता है। लोभी व्यक्ति को हमेशा कुछ न कुछ चाहिए ही होता है। कभी भौतिक सुख तो कभी यश, तो कभी मान–सम्मान तो कभी पद प्रतिष्ठा। इन सब का मूल कारण लालच ही है।

संत कबीरदास कहते हैं कि मन महासागर है, जिसमें इच्छाएँ रूपी लहरें निरंतर उठती रहती हैं। वो कभी खत्म ही नहीं होतीं। इस भवसागर से वही बच निकल सकता है, जिसके पास संतोष रूपी विवेक की नाव हो। अनंत इच्छाएँ मानव के मन में असंतोष भर देती हैं। असंतोषी व्यक्ति नैतिक मूल्यों को त्यागकर बेईमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार तथा और भी अनेक अपराध करके अमीर बनने की इच्छा करता है तथा वास्तविकता से दूर मृगतृष्णा में भटकता रहता है। धन के लालच के कारण मनुष्य मानव से दानव बन जाता है और यही तृष्णा मनुष्य के पतन का कारण बनती है। जिस प्रकार शहद में गिरी मक्खी जितना अधिक उड़ने का प्रयास करती है, उतनी ही उसमें घँस जाती है, उसी प्रकार धन के लालच में डूबा व्यक्ति जितना विकारों से मुक्ति पाने की इच्छा करता है उतना ही उसमें फँसता चला जाता है।

"माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।
आशा तृष्णा न मुई, यों कथि कहैं कबीर।।" [3]

शोधछात्रा, रो-हाऊस 7, लोकमान्य सोसायटी, सुदामापुरी के पास, डी.डी.नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)

लोभ मनुष्य के अन्दर कोढ़ के समान होता है। लोभ मनुष्य को ऐसे रास्ते पर ले जाता है जिसके बारे में वह स्वयं भी नहीं जानता।

इससे बचने का सर्वोत्तम उपाय है, अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण करना। जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं और इन्द्रियों को वश में नहीं रखता, वह जीवन भर अपने आप से असंतुष्ट रहता है। लोभ ही पाप का कारण है। जिस व्यक्ति में लोभ उत्पन्न हो जाता है, उसे किसी और बुराई की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि लोभ ही एक ऐसी बुराई है, जो बाकी सभी बुराइयों को अपने आप अपने पास खींचकर ले आती है।

इस बुराई से बचने का एकमात्र उपाय है, संतोष। संतोष एक सात्विक गुण है, जो मनुष्य को ईश्वरत्व की ओर ले जाता है। संतोष एक ऐसा गुण है, जो अनावश्यक और स्वार्थ भाव से प्रेरित किए जाने वाले कार्य को रोकता है। एक संतोषी व्यक्ति शांतिपूर्वक तथा एकाग्रता से अधिक कार्य करता है, क्योंकि उसका मन और बुद्धि लोभ और लालसा से मुक्त रहती है। संतोषी मन जीवन में सबसे बड़ा वरदान होता है, क्योंकि न ही वह कभी खिन्न होता है और न ही परेशान।

"गोधन, गजधन, बाजधन और रतनधन खान।
जब आए संतोष धन, सब धन धूलि समान।।" (4)

कबीरदास जी कहते हैं कि सारे धन– गाय, हाथी, घोड़ा, रत्न और धन की खान सब एक के बाद एक मिल जाएँ, तो भी व्यर्थ है, क्योंकि जब संतोष रूपी धन प्राप्त हो जाता है, तो ये सारे धन धूल के समान प्रतीत होने लगते हैं। संतोष रूपी धन मिल जाने के बाद न ही कोई चाहत रहती है और न ही कोई राग द्वेष।

संतोषी व्यक्ति को परम आनन्द प्राप्त होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि संतोष रूपी धन कैसे प्राप्त किया जाए ? इस संबंध में संत कबीर कहते हैं कि– "परिणाम अथवा फलाशा के विचार से रहित होकर स्व–कर्तव्य को करते रहना, किसी वस्तु के अभाव पर खिन्न न होना, जिस स्थिति एवं अवस्था में रहने का संयोग हो जाए, उसी में सहर्ष रहना तथा किसी प्रकार भी अपनी इच्छा के वशीभूत न होना सन्तोष कहलाता है।"(5)

अर्थात् व्यक्ति तभी संतुष्ट रह सकता है, जब उसने अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण तथा अपनी इच्छाओं को कम करना सीख लिया हो। लोभ पर अंकुश लगाना ही संतोष की ओर बढ़ने का नाम है। यदि समय–समय पर अपनी इच्छाओं को नियंत्रित नहीं किया गया, तो लोभ बढ़ता ही जाता है और उसका कभी अंत नहीं होता। वही व्यक्ति बुद्धिमान होते हैं, जो अपने स्वार्थपूर्ण लालसा को समाप्त कर देते हैं तथा अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को कम करते जाते हैं। ईर्ष्या से दूर रहना ही संतोष के मार्ग में सहायक है।

संतोष एक ऐसा अमृत है, जिसका पान करके व्यक्ति अमर हो जाता है। जिसके पास सन्तोष होता है, वह इस भौतिक संसार का राजा न होते हुए भी वह एक शहंशाह की तरह प्रसन्न सुखी व चिंतारहित जीवन बिताता है।

"चाह गई चिंता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए वे शहंशाह के शाह।।" (6)

स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर के लिए संतोष एक उपयुक्त औषधी के समान है। खुशियाँ अधिकाधिक चीजों को इकट्ठा करने में नहीं, बल्कि जो है उसी में संतुष्ट रहने से प्राप्त होती हैं। जिस व्यक्ति को कम चाहिए उसी के पास हमेशा पर्याप्त होता है।

संतोष एक दैवीय गुण है। संतुष्ट व्यक्ति अपने अन्तर्मन से ही संतोष प्राप्त कर लेता है। संतोष प्राकृतिक संपत्ति है। इसके विपरीत भोग–विलास की सामग्री कृत्रिम है, जिसका संचय क्षणिक होता है। अर्थात् उसे हम अपने साथ लेकर नहीं जा सकते। इसीलिए कबीरदास जी कहते हैं कि–

"कबीर सो धन संचिये, जो आगे कू होई।
सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोई।।" (7)

अर्थात् संतोष ही एक ऐसा धन है, जो मरकर भी काम आता है। संतोष धन प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति की आँखों में चमक, मुख पर तेज, अधरों पर मुस्कान और मन में कर्तव्य परायण की भावना आ जाती है। संतोष का आचरण मानव को मानव बनाता है और सामान्य से विशेष की ओर ले जाता है।

संदर्भ :

(1) भंडारी, नारायण सिंह (2013) : चित्त–शांति के स्त्रोत कबीर के दोहे, पुस्तक महल, हैदराबाद, पृ. 37.

(2) *वही।*

(3) *दास, डॉ.श्याम सुन्दर (2012) : कबीर ग्रंथावली, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण, पृ. 87.*

(4) *भंडारी, नारायण सिंह (2013) : चित्त–शांति के स्त्रोत कबीर के दोहे, पुस्तक महल, हैदराबाद, पृ. 39.*

(5) *'सहायक' डॉ. रामजीलाल : कबीर दर्शन, हिन्दी विभाग, लखनऊ, प्रथम संस्करण, दिसम्बर 1992, पृ. 337.*

(6) *भंडारी, नारायण सिंह (2013) : चित्त–शांति के स्त्रोत कबीर के दोहे, पुस्तक महल, हैदराबाद, पृ. 84.*

(7) *कश्यप, बीरपाल सिंह एवं सिंह, गजेन्द्र (2008) : सद्गुरू कबीर साहिब की साखियां, दिव्यांश पब्लिकेशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, पृ. 84.*

❁ ❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 161, Vol - XVI (6), August - 2017, Page No. 45-47
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

उषा प्रियंवदा की कहानियों में नारी स्वच्छंदता

प्रस्तुत शोधपत्र में हिन्दी की बहुचर्चित कहानीकार उषा प्रियंवदा की कहानियों में नारी स्वच्छंदता की पड़ताल की गई है। उनके द्वारा लिखी गई कहानियाँ देशी आत्मा के साथ विदेशी परम्परा के मेल से बनती दिखाई देती हैं। अधिकांश कहानियों में नारी की स्थिति स्वच्छंद है। उन्होंने स्त्री शोषण के प्रति आवाज उठाई है। भारतीय सभ्यता की प्राचीन रुढ़िवादी परम्परा का लेखन के माध्यम से जो कुठाराघात किया है, उससे नारी को 'स्वत्व' प्राप्त हुआ है। उनकी कहानियों में भारतीय एवं विदेशी संस्कृति की टकराहट के साथ-साथ स्त्री की मुक्ति के कई रुप उजागर हुए हैं। उनकी कहानियों में बदलती स्त्री की छवि, उनकी जागरुकता और स्वच्छंदता को देखकर यह अनुमान स्वतः लगाया जा सकता है कि बदलते समय और समाज की तत्कालीन स्थिति को उजागर किया गया है। स्त्री की आंतरिक द्वंद्व की एक-एक परत को बहुत ही सहजता से खोलने का सफल प्रयास हुआ है। भारतीय स्त्रियाँ समाज में व्याप्त रुढ़िवादी परम्पराओं से मुक्त हुई हैं।

पंढरीनाथ देवले

कहानियाँ गढ़ना तात्कालिक परस्थितियों एवं परिवेश का प्रतिरूप होता है। प्रेमचंद युग एवं पूर्वोत्तर युग में अधिकांश कहानियों में पुरूषवादी सत्ता के परिपेक्ष्य में कहानियों को गढ़ा है। स्वतन्त्र भारत की विकसित वास्तविकताओं एवं बदलते हुए मूल्यों के प्रति कहानीकार सजग हो गए हैं। उनकी कृतियो में जीवन्तता को बोध होने लगा है, उनका सामाजिक अनुभव लेखन समाज को एक नई दिशा प्रदान कर रहा है।

उषा प्रियंवदा ने कहानियों में नारी की स्वच्छन्दता के अनेक प्रतिरूप स्पष्ट किए हैं। नारी पुरूषवादी सत्ता पर निर्भर न होकर वह पुरूष के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने लगी है। भारतीय मूल्यों को त्याग कर एवं परिवर्तन कर पुरुषों पर निर्भर न होकर वह स्वयं जिम्मेदारी का वहन कर स्वच्छन्द जीवनयापन करने लगी है।

आधुनिक मूल्यों को स्वीकारने और पुराने मूल्यों को नकारते हुए आधुनिक स्त्रियाँ बिना सोचे–समझे आधुनिकता को अपनाने के लिए व्याकुल हैं। इतना ही नहीं अपनी कहानियों के माध्यम से उषा प्रियंवदा ने उस तरफ भी इशारा किया है कि किस प्रकार पूरी तरह से परिवार को नकारते हुए, यौन–स्वच्छंदता और स्वतंत्र जीवनयापन को महत्व देने वाली आधुनिक स्त्रियों को अपने जीवन में बहुत सी विपरीत मनःस्थितियों का सामना करना पड़ा है। जिस कारण वह निराशा, ऊब, घुटन और अकेलेपन जैसी आधुनिक बीमारियों की शिकार हुई हैं और आज भी हो रही हैं। उषा प्रियंवदा ने आज की स्त्रियों को अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति चेतनशील रहने की दिशा देती हैं। आज की स्त्रियाँ बहुत जागरूक हो चुकी हैं। वह कहीं भी खुद की गलती की वजह से झुकना नहीं चाहती हैं। यहाँ तक कि आधुनिक स्त्रियाँ अपनी अस्मिता की खोज शादी से पहले प्रेम–संबंधों में भी करती हुई नजर आ रही हैं। बदलते समय और समाज में जहाँ स्त्री–पुरूष का परस्पर आकर्षण जितना सहज हुआ है, वहीं पर प्रेमी के साथ सम्बंध ा स्थापित करने की प्रक्रिया काफी जटिल हुई है। आधुनिक स्त्रियाँ प्रेम से पूर्व अपनी निजी अस्मिता और अस्तित्व को महत्व दे रही हैं। इस पारंपरिक समाज में पुरूषवादी मानसिकता को, आधुनिक स्त्री की बदलती सोच ने चुनौती देना शुरू कर दिया है। स्त्री–पुरूष के बीच प्रेम सम्बन्धों में पुरूष प्रेम पाना चाहता है, लेकिन स्त्री उस प्रेम मे पूर्ण समर्पण करने से पहले अपने प्रेमी पुरूष में अपने अस्तित्व और सम्मान को पाना चाहती है।

गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी का विशेष महत्व है। शिल्पगत नियमों की विशिष्ट सीमाओं के भीतर रहकर भी कहानी साहित्य ने जीवन के सभी पक्षों की तात्विक व्याख्या का साहस किया है। नई कहानी में अपनी विशिष्टता की वजह से बहुचर्चित और बहुप्रशंसित रही उषा प्रियंवदा आज हिंदी कहानी की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं।

उषा प्रियंवदा का जन्म कानपुर में 24 दिसम्बर 1930 को हुआ था। आपकी प्रथम कहानी उस समय की जनप्रिय पत्रिका 'सरिता' में उषा सक्सेना के नाम से प्रकाशित हुई थी। किन्तु बाद में अपनी माँ का नाम प्रियंवदा जोड़कर लेखन कार्य अनवरत करने लगी। वर्तमान में आप अमेरिका में प्रवासी भारतीय हैं। आपने भारतीय अमेरिकी जीवन को करीब से देखा है, भोगा है एवं अनुभव किया है। एक महिला की सार्वभौमिक परिस्थिति को आत्मसात् कर कहानी के माध्यम से नारी स्वच्छन्दता के विभिन्न रूपों को अवतरित किया है।

उषा प्रियंवदा ने आज के नारी जीवन की विसंगतियों को सोचा समझा है। वे आधुनिक युग की महिला कथाकार हैं। इन की कहानियाँ नयेपन को लिए हुए हैं। वैसे तो उनकी बहुत सारी

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

कहानियाँ हैं। उषा प्रियंवदा के कहानी संग्रह निम्न प्रकार से है :

(1) फिर बसंत आया–सन् 1961
(2) जिन्दगी और गुलाब के फूल–सन् 1961
(3) एक कोई दूसरा–सन् 1966
(4) कितना बड़ा झूठ–सन् 1997
(5) मेरी प्रिय कहानियाँ–सन् 1997
(6) शुन्य एवं अन्य रचनाएँ–सन् 1997
(7) सम्पूर्ण कहानियाँ–सन् 1997

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में नारी के रूपों को अवतरित किया है। प्राचीन मूल्यों को तोड़कर पुरूषों के भाँति नारी हर जिम्मेदारी को वहन करने की क्षमता रखती है।

'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में उषा प्रियंवदा ने स्त्री के अन्य प्रकार के रूप को स्पष्ट किया है। जो आज कल किसी भी परिवार में देखने को मिल जाता है। जब तक भाई कमाता है, तो घर में सभी सुखपूर्ण एवं कुशल रहते हैं, किन्तु वह जब बेरोजगार होता है और बहन कमाने लगती है, वैसे ही परिवार का बेरोजगार भाई के प्रति स्नेह टूट जाता है। भाई को बोझ समझा जाता है।

"सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे वृन्दा पर था। अक्सर वह सोच उठता कि यह वही वृन्दा है; जो उसके आगे–पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड़–दौड़कर किया करती थी ! जब भी उसने चाय मांगी, वृन्दा ने चाय तैयार कर दी। और अब? एक रात जरा देर से आने पर उसने सुना, वृन्दा बिगड़कर माँ से कह रही थी, "काम न धंधा, तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें। तुम कब तक जाड़े में बैठोगी, माँ? उठाकर रख दो, अपने–आप खा लेंगे।"(1)

पुरूषवादी सत्ता पर नारी सत्ता भारी है। नारी की स्वच्छंदता को स्पष्ट किया है।

'मन–हठ' कहानी के माध्यम से उषा प्रियंवदा ने अनमेल विवाह की समस्या को बताया है, साथ ही रेखांकित किया गया है कि लड़की भी पुनर्विवाह कर सकती है।" मुकुल की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। आठ साल बाद वही मुकुल एक नन्हे शिशु को लिए अमृता के द्वार पर उपस्थित होता है।" "अमृता उसे एक टक देख रही थी। आठ सालों में वह बहुत बदल गया था। बरसों का बीमार–सा, टूटा–टूट, खोया–खोया, उदास और बेहद अकेला। उसके दर्द ने उसे एक स्निग्ध, अलौकिक आकर्षण दे दिया था, जिसे केवल अमृता की ही आँखें देख सकीं।"

"यानी अमृता को पति के रूप में एक आत्मविश्वासी और आत्मभिमानी मजबूत इंसान नहीं थका–हरा, टूटा, बेहद अकेला–सा व्यक्ति चाहिए था, जो उसकी दया और करूणा का पात्र हो सके, उसकी अनुकम्पा का याचक।"(2)

यहाँ पुरुष नारी की दया का भागीदार बनता है।

'कितना बड़ा झूठ' कहानी में उषा प्रियंवदा ने नारी की स्वतन्त्र सत्ता को प्रतिपादित किया है। विदेश में बसी भारतीय नारी अपने भारतीय मूल्यों को भूल कर, पति से छूपाकर एवं झूठ बोलकर विदेशी युवक से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है। मैक्स बासबेल जब वारिया नामक युवती से विवाह कर लेता है, तो किरन का मन उदास होता है। वह उदास मन से कहती है –"सूना ही होगा, मैक्स वारिया से शादी कर ली है।" यह सुनकर पति कहता है–"विभाग के लोगों ने मिलकर प्रेजेंट दिया है। हनीमुन के लिए मैक्सिको गए है, शायद अभी वही हों।"(3)

समाज के पारम्परिक मूल्यों को तोड़कर स्वच्छन्दतावादी जीवन को स्पष्ट किया है।

उषा जी की 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी में भारतीय सामाजिक मूल्यों के प्रति उदासीनता को भाव दृष्टिगत होता है। यहाँ पर भी स्त्री की स्वतंत्र सत्ता का भाव ज्यादा बलशाली है। नायिका वसु अनैतिक तरीके से अपने पारिवारिक दायित्व के प्रति उदासीन हो जाती है। पति और बच्ची को छोड़कर विदेश चली जाती है। स्वार्थ में अंधी होकर अपने पति के साथ असहयोग का व्यवहार करती है। दोनों का तलाक हो जाता है।

"विवाह के छः साल बाद स्वतंत्रतापूर्वक जीवन कितना अच्छा लगता था, श्यामल के अंकुशो से निकल कितना हल्का–हल्का लगता रहता था। और कितने मादक थे। वे अस्थायी सम्बंध– नलिन, पटनायक, विंस..... बेटी पास लेटी हुई है और वह अपने जीवन में आए पुरूषों के नाम गिन रही है।"(4)

भारतीय सभ्यता के विपरित परिस्थिति बनाकर नायिका स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करती है।

उषा प्रियंवदा की 'आधा शहर' कहानी की नायिका इला स्वाभिमानी स्त्री की तरह वह अपने हक के लिए आवाज उठाती है। वह घर से भागकर दलदल में न फँसकर अपने अस्तित्व को बनाने के लिए विदेश पहुँचकर पढ़ाई पूरी करती है। वह पुरूषवादी सत्ता से घृणा करती है। कहानी की नायिका के माध्यम से उषा जी कहना चाहती है, "एक पुरूष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता? एक स्त्री अगर अकेली सम्मान से जीना चाहती है, तो उसके चारों तरफ गिद्ध नोच कर खाने को तैयार रहते हैं।"(5)

नायिका पुरूषवादी सत्ता न चाहकर अपनी जिम्मेदारी का वहन स्वयं करना चाहती है।

उषा प्रियंवदा की 'छुट्टी का दिन' कहानी की नायिका माया सहगल उच्च शिक्षित है, वह कॉलेज में लेक्चरार है। वह घर से दूर रहकर नौकरी करती है। वह सप्ताह के सातों दिन व्यस्त रहती हैं, केवल छुट्टी के दिन वह पुरूषों के भांति अकेले घुमना, फिल्म देखना आदि कार्य करती हैं। "अचानक ही वह कुर्सी खिसकाकर उठ खड़ी हुई, घड़ी पर नजर डाली तो पाया कि बड़ी आसानी से दस बजे की फिल्म देखी जा सकती है। जाकर फिर अलमारी खोली। कुछ सोचकर एक साड़ी निकालकर पलंग पर रख दी और तैयार हाने लगी। अभ्यस्त हाथों से बाल ठीक किए। पाउडर लगाया। कुछ देर अपने को देखती रही और लिपस्टिक उठाकर अपने होंठ, खूब गहरे लाल कर लिए। कपड़े बदले और चैती से कहा, "मैं सिनेमा जा रही हूँ।"(6)

भारतीय रूढ़वादिता के प्रति हीन दृष्टिकोण है, नायिका पुरूषों की भांति अपने शौक पूरे करती है।

उषा प्रियंवदा की 'जाले' कहानी की नायिका, जो आधुनिक युवतियों मे से एक थी, जो पुरूषों से शत् प्रतिशत समानता का दावा करती है। वह एम.ए. कर सरकारी नौकरी प्राप्त कर लेती है और अपने माता–पिता से दूर रहकर आधुनिक जीवन व्यतीत करती है।

"कौमुदी उन आधुनिक युवतियों में थी, जो पुरुषों से शत–प्रतिशत समानता का दावा करती है। यूनिवर्सिटी से एम.ए. कर और एकप्रभावशाली सम्बन्धी के द्वारा पाँच सौ रुपए महीने की सरकारी नौकरी पा, अब वह माता–पिता से दूर अकेली रहती थी। अपने छोटे से बँगले को उसने बड़े श्रम और घंटों विचार करने के बाद सजाया था। उसकी बैठक और शयन–कक्ष किसी अँगरेजी मैगजीन के होम डेकोरेटिंग के अन्तर्गत दिए गए कमरों के चित्रों के आधर पर सजाए गए थे। बँगला स्वयं एक चित्र–सा लगता था।"[7]

प्राचीन काल में स्त्री को पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता था, किन्तु वर्तमान में दृश्य इससे अलग है।

उषा प्रियंवदा की प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' में भी स्त्री का आवलोकन होता हैं। गजाधर बाबू अर्थ की पूर्ति तक ही सीमित रहता है। जब उसकी घर में वापसी होती है। परिवार उपेक्षा करने लगता है। क्योंकि घर की महिलाएँ स्वतंत्र है, वह स्वच्छंदता चाहती है। गजाधर बाबू की परिवार से वापसी के पश्चात् "गजाधर बाबू रिक्शे में बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए। बहू ने अमर से पूछा, "सिनेमा ने चलिएगा न?" बसंती ने उछलकर कहा, "भइया, हमें भी।"[8]

गजाधर बाबू परम्परागत व्यक्ति होने के कारण रोक–टोक करते रहते थे। जिससे बहू, बेटी उपेक्षित भाव रखती थी। बहू बेटी स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण का आत्मसात् किए हुए है।

उषा प्रियंदा की कहानी 'मोहबंध' स्वेच्छाचारी एक लड़की की कहानी है। नीलू एक अल्हड़ लड़की है, नीलू के जीवन में कई पुरुषों आगमन होता है।

"तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते, राजन ! मैं एक दायरे में बँधकर नहीं रह सकती," नीलू ने कहा। "तुम्हारा घर में रहना बंधन है?" राजन ने पूछा। स्थिति गंभीर होती जा रही थी। नीलू ने राजन की राषभरी मुद्रा को देखकर, कुछ फीकी हँसी हँसते हुए अचला से कहा, "यह चाहते हैं कि मैं घर में रहूँ। कुत्ते पालूँ, बाग देखूँ और परचर्चा करूँ जैसे कि सब करते हैं। मुझसे नहीं होता बेहद ऊब जाती हूँ।"[9]

नीलू किसी भी प्रकार से बंधन में न बंधकर स्वतंत्रता पूर्वक जीवन–यापन को महत्व देती है।

उषा जी की 'ट्रिप' कहानी में पत्नी स्वच्छंद भाग लेती है। ट्रिप कहानी पाश्चात्य संस्कृति से परिपूर्ण है। "वह अपने पति से साफ–साफ कहती है, कि वह अपने अफेयर चुपचाप कंडक्ट करेगी; दूसरें, इस आयु मे वह नए बच्चे की जिम्मेदारी नहीं लेगें, इसका वह ध्यान रखेगी। बस, और कुछ नहीं माँगते।"[10]

स्वामी विवेकान्दन ने भी कहा है कि जब तक नारी स्वयं अपने विकास के लिए आगे नहीं आएगी, तब तक विकास संभव नहीं होगा। उषा प्रियंवदा की कहानियों ने यह बात सिद्ध कर दी हैं।

अतः कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा द्वारा जो कहानियाँ लिखी गई हैं, वे वास्तव में देशी आत्मा के साथ विदेशी परम्परा के मेल से बनता दिखाई पड़ता है। अधिकांश कहानियों में नारी की स्थिति स्वच्छन्द है।

नई कहानी के दौर की लखिका उषा प्रियंवदा एवं अन्य लेखिकाओं ने स्त्री शोषण के प्रति आवाज उठाई है। भारतीय सभ्यता की प्राचीन रूढ़वादी परम्परा का लेखन के माध्यम से कुठाराघात किया है, जिससे नारी को 'स्वत्व' प्राप्त हुआ है। उषा जी की कहानियों में भारतीय एवं विदेशी संस्कृति की टकराहट के साथ–साथ स्त्री की मुक्ति के कई रूप उजागर हुए हैं। इनकी कहानियों में बदलती स्त्री की छवि, उनकी जागरूकता और स्वच्छंदता को देखकर यह अनुमान स्वतः लगाया जा सकता है कि बदलते समय और समाज की तत्कालीन स्थिति को उजागर किया गया है। स्त्री के आतंरिक द्वंद्व की एक–एक परत को बहुत ही सहजता से खोलने का सफल प्रयास हुआ है। भारतीय स्त्रियाँ समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परम्पराओं से मुक्त हुई हैं।

संदर्भ :

(1) जैन, निर्मला (सं.) (2014) : मेरी कहानियाँ : उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 55.

***(2)** जैन, निर्मला (2015) : कथा समय में तीन हमसफर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.30.*

***(3)** प्रियंवदा, उषा (2009) : संपूर्ण कहानियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ. 348.*

***(4)** वही, पृ. 338.*

***(5)** वही, पृ. 450.*

***(6)** वही, पृ.171–172.*

***(7)** वही, पृ.177.*

***(8)** जैन, निर्मला (सं.) (2014) : मेरी कहानियाँ : उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.94.*

***(9)** वही, पृ.74.*

***(10)** प्रियंवदा, उषा (2009) : संपूर्ण कहानियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ.353.*